ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-7* August- 2021
Innovation The Research Concept

भारतीय लोकतन्त्र की सच्चाईः उपेक्षित होती नागरिक संवेदनाएँ

The Truth of Indian Democracy: Ignoring Civil Sensations

Paper Submission: 14/08/2021, Date of Acceptance: 24/08/2021, Date of Publication: 25/08//2021

तीर्थ प्रकाश
एसोसिएट प्रोफेसर,
राजनीति विज्ञान विभाग,
मंगलौर महाविद्यालय,
हरिद्वार, उत्तरखंड, भारत

सारांश

भारतीय लोकतन्त्र का वर्तमान परिदृश्यात्मक अवलोकन यह अनुभव करा रहा कि राज्य के निर्णयों में कुछ व्यवहारगत त्रुटियाँ उपस्थित हो गयी हैं। जिनसे लोकतन्त्र के बुनियादी ढाँचे (स्वतन्त्रता, समानता भातृत्व) में न केवल गिरावट आई है। अपितु जन संवेदनाएँ अप्रत्याशित रूप से राजकीय उपेक्षा का शिकार हो रही है। पिछले दशक का अनुभव बताता है कि हमारे लोकतन्त्र का कल्याणकारी स्वरूप सिद्धान्त और व्यवहार प्रतिगामी मार्ग पर अग्रसर है। हम बहुलवाद की उदारता से एकत्ववाद की संकीर्णता की ओर बढ़ रहे है। विशेष विचार की सामाजिक एकता के आभाषी लोकतन्त्र में व्यक्ति की गरीमा गौण हो जाती है। एक सच्चा लोकतन्त्र अपनी आलोचना और अपनी प्रसंशा समान रूप स्वीकृत करता है। शायद भारत दुनिया का विशाल लोकतन्त्र तो बना है किन्तु एक अच्छा और सच्चा लोकतन्त्र नहीं बन सका। नागरिक सम्बन्धी आपेक्षित विकास के मार्ग में धर्म, जाति, क्षेत्र भाषा आदि की बाधाएँ लगातार विकराल हुई है। राज्य जिसके ऊपर इनकी मुक्ति की जिम्मेदारी थी वह अपने दायित्वों से विमुख ही नहीं हुआ अपितु निर्वाचन प्रक्रियाओं में जनमत निर्माण के लिए बढ़ावा देता रहा है। इससे हम नागरिकों की आन्तरिक और बाह्य संवेदनाएं उपेक्षित हुई हैं, साथ ही हमारा लोकतन्त्र भी अमर्यादित हुआ है।

The present scenario overview of Indian democracy is showing that some practical errors have been present in the decisions of the state. Due to which the basic structure of democracy (freedom, equality and fraternity) has not only declined But public sentiments are unexpectedly falling victim to state neglect. The experience of the last decade shows that the welfare nature of our democracy, in theory and practice, is on a regressive path. We are moving from the liberalism of pluralism to the narrowness of monotheism. The dignity of the individual becomes secondary in a vernacular democracy of social unity of special thought. A true democracy accepts its criticism and its praise equally.Perhaps India has become the world's largest democracy but could not become a good and true democracy. The barriers of religion, caste, region, language, etc., in the path of relative development related to citizens, have become increasingly formidable. The state on which the responsibility of their emancipation was not only deviated from its responsibilities but has been promoting public opinion formation in the election process. Due to this, the internal and external sensitivities of us citizens have been neglected, as well as our democracy has also been limited.

मुख्य शब्द : लोक कल्याणकारी, सदजीवन, संवेदनाए, सहिष्णुता, बेहतरीन, विशेषाधिकार, पदसोपान, नवराष्ट्रवाद वचनबद्धताऐं, नागरिक बोध।

Keywords: Public Welfare, Good Life, Sensibility, Tolerance, Best, Privilege, Hierarchies, Neo-Nationalism Commitments, Civic Sense.

प्रस्तावना

आधुनिक युग प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था का युग है। फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने तीन बुनियादी विचारों (स्वतन्त्रता, समानता, भातृत्व) के आधार पर राजतन्त्रों की निरंकुशता के विरूद्ध, लोकतन्त्र के नये विचार को जन्म दिया। समय के साथ मानव जीवन के राजनीतिक विकास ने अरस्तू के उस विचार को ओर अधिक पुख्ता किया जिसमें उसने कहा था कि 'राज्य जीवन के लिए उत्पन्न हुआ है और सदजीवन के लिए उसका अस्तित्व बना रहेगा'1अर्थात राज्य मानवीय कल्याण के लिए जन्म से मृत्यु तक साथ देता रहेगा। शासन के इस नवीन रूप ने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया और प्रत्येक राष्ट्र द्वारा या तो पूर्ण रूपेण अथवा आंशिक बदलाव के पश्चात लोकतन्त्र को अपनाया।जहाँ तक भारतीय लोकतन्त्र को अपनाने का प्रश्न है भारतीय शासन व्यवस्था का वर्तमान स्वरूप लोकतन्त्र की श्रेणी में दर्ज है। प्रजातन्त्र की यह श्रेणी न केवल उपनिवेशीय शोषण के विरूद्ध भारतीयों के स्वतन्त्रता समर्थक प्रकृति का परिणाम माना जा सकता है वरन् प्राचीन युगीन सभ्यताओं के राजनीतिक केन्द्र बिन्दुओं में ''व्यक्ति का महत्व'' आधारभूत माना जा सकता है। भारतीय शासन व्यवस्थाओं की प्राचीनता इस बात को गुणों के रूप रेखांकित करती हैं कि राजा और प्रजा दोनों समान रूप से शासन के कार्य-कलापों में सभा और समिति के माध्यम से सहभागी हुआ करते थे।[2]

आज का भारतीय लोकतन्त्र दुनिया के सबसे बड़े लोकतन्त्र का द्योतक है। संख्यात्मक दृष्टि से हम इस पर गौरान्वित हो सकते है किन्तु गुणात्मक पक्ष पर अनेक प्रश्न उभर आते है कि बडे लोकतन्त्र के क्षैतिज पर क्या हमारी उपस्थिति सच्चे एवं व्यापक जनशासन की हो पाई। हमारे लोकतन्त्र की प्रक्रियाओं में उपजी राजनीति क्या भारतीय समाज में उठने वाली मांगो, समस्याओं और द्वन्द्वों को समाधान तक पहुँचा पाती है या फिर ''राजनीति'' स्वयं इन द्वन्द्वों और मांगो का शिकार हो जाती है। शताब्दियों पूर्व भूख और भ्रष्टाचार को शिखर तक पहुचाने वाली शोषणात्मक एवं निरंकुशता की प्रणालियों की समाप्तिका आगाज फ्रान्स की राज्य क्रान्ति (1789) से हुआ। इस जनक्रान्ति ने जनता की सक्रिय भागीदारी वाले उद्धार एवं कल्याणकारी राज्यों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। आधुनिक युग के राज्यों ने जन भावनाओं पर आधारित शासन व्यवस्थाओं को आत्मसात कर हम की भावना को साकार किया। आजादी के पश्चात 1947 में भारतीय जनमानस द्वारा भी संविधान और संविधानवाद के प्रति सच्ची श्रृद्धा का संकल्प 1789 की क्रान्ति की भाँति ही दोहराया गया।किन्तु भारतीय संविधान की प्रस्तावना से लेकर मौलिक अधिकार सम्बन्धी प्रावधानों और नीति निर्देशक तत्वों की तमाम कल्याणकारी भावनाओं की आपूर्ति में लग रहा विलम्बकारी समय, संकेत है उस परिस्थिति का, जिसमें नागरिकों के प्रति राजनीतिक सत्ताओं और संवैधानिक संस्थाओं का व्यवहार अधिकांश उपेक्षापूर्ण रहा है। राजनीतिक सत्ताएँ तो निश्चिततौर पर दोषी मानी जा सकती है किन्तु भारतीय समाज में नागरिक अनुत्तरदायी व्यवहार भी कम दोषी नहीं है। लोकतन्त्र के सर्वाधिक प्रभावशील गणतन्त्रीय रूप को अपनाने के पश्चात भी भारतीय समाज अनेक विभाजन रेखाओं को पोषित और शोषित करता रहा है। ये विभाजन भारतीयसमाज में धर्म, जाति, नस्ल लिंग, रंग, भाषा, क्षेत्र के आधार पर व्याप्त हैं।

उक्त विभाजन आधार अनेक वादों को जन्म देता है जिसके चलते भारतीयों के मध्य 'हम की भावना' छिन्न-भिन्न नजर आती है। पिछले सात दशकों में भारतीय समाज द्वारा नागरिक बोध के जिस संकल्प को, संविधान की प्रस्तावना में व्यक्त किया था, वह अपने महत्व को लगातार खो रहा है।

राजनीतिक सत्ताओं से किसी बड़ी परिवर्तनीय अपेक्षा बेईमानी हो जाती है जब लार्ड एक्टन कहते है कि 'सत्ता भ्रष्ट करती है और पूर्ण सत्ता पूर्णतया भ्रष्ट करती है।'[3] अर्थात सभी तरह के परिवर्तन कानूनी सत्ता से हांसिल नहीं होते चूँकि सत्ता निष्पक्ष कार्य करें ऐसा मानना आशंकाओं से भरा है।

संविधान की प्रस्तावना का प्रथम वाक्यांश भारतीय जनमानस को जिस नागरिक एकीकरण की शक्ति के रूप में परिभाषित करता है हम उसी की प्राप्ति के लिए संघर्षरत हैं। इसके अतिरिक्त अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति का मार्ग तो और भी कष्टकारी प्रतीत होता है।

लोकतान्त्रिक मूल्यों पर हमने उदारवादी भावना का कल्याणकारी राज्य स्थापना का लक्ष्य रखा है, जिसका उद्देश्य आदर्श समाज का निर्माण है। डा0 बी0आर0 अम्बेडकर इस आदर्श समाज के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते थे कि-''अगर आप मुझसे जानना चहाते है कि आदर्श समाज कैसा होगा, मेरा आदर्श समाज ऐसा होगा जो स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे पर आधारित होगा।''[4]

प्रश्न यह उठता है कि आदर्श समाज और कल्याणकारी राज्य की निर्माण यात्रा में हमने जो दूरी तय की है क्या उसकी दशा और दिशा सम्यकता की ओर बढ़ रही है। हमने किस हद तक धर्म, जाति, लिंग, वंश के ज्ञात-अज्ञात मानव समाज के विभेदों को दूर कर लिया है। हमने किस हद तक अपनी संवैधानिक वचनबद्धताओं के गणतन्त्र में सामाजिक आर्थिक-शैक्षिक विषमताओं के आधारों का उन्मूलन किया है। इस तरह के तमाम प्रश्नों के उत्तर तलाशने पर ज्ञात होता है कि ऊपरी तौर पर तो भारतीय लोकतन्त्र दुनिया के सबसे बड़े लोकतन्त्र की उपाधि प्राप्त कर चुका है। सत्ता परिवर्तन की प्रक्रिया बताती है कि प्रक्रियाओं के प्रति अभी तक सम्मान बना हुआ है। किन्तु जैसे-जैसे मूल्यांकन का 'बाइस्कोप' नीचे की

ओर जाता है भारतीय लोकतन्त्र के कल्याणकारी राज्य और आदर्श समाज के निर्माण की पोल कड़ी-दर कड़ी खुलती जाती है। सर्वप्रथम भारतीय प्रजातन्त्र वैचारिक द्वन्द्वों की ओर बढ़ रहा है, विचारों के असंख्य पुंज बहुलवाद की साझा संस्कृति के विघटन की बुनियाद पर पनप रहे हैं। पिछले सात दशकों के लोकतान्त्रिक मूल्यों के नागरिक प्रशिक्षण का मूल्यांकन बताता है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था की सामन्ती जड़ता इतनी दूषित है कि उसमें समानता के आधार का नागरिक समाज स्वीकार्य नहीं हो पा रहा है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि सदियों से विशेषाधिकार सम्पन्न वर्ग अपने हितों को छोड़ना नहीं चहाता, दूसरी ओर वो विपनन वर्ग जिसको आधुनिकता ने आपेक्षित परिवर्तन का स्वप्न दिखाया था।वह आज भी अपने हिस्से के अधिकारों में प्रतीक्षारत है। अधिकांश मामलों में हमारा लोकतान्त्रिक रूप से अपरिपक्व रह जाना बताता है कि सामाजिक शोधन के बिना कोई राष्ट्र एकीकरण की ओर नहीं बढ़ सकता। हमारे लोकतन्त्र में सरकारों का निर्माण यह बताता है कि संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर एवं नागरिक समाज के बहुमत की स्वीकृति की अपेक्षा से शासन चल रहा है किन्तु यह भी सत्य है कि चुनावी प्रक्रिया में धार्मिक विभाजन, जातीय संघर्ष क्षेत्रीय प्रभाव, भाषा की संकीर्णताओं के साथ बेकारी, बीमारी, अज्ञानता, गरीबी असीमित प्रभाव दिखाती है।[5]

आजादी के पश्चात भारतीय परिदृश्य में जिस प्रकार के परिवर्तन संविधान की मूल भावना में आपेक्षित थे उसका भ्रम भूतकाल की कई घटनाओं में टूटा है। मसलन इन्दिरा गाँधी द्वारा 25 जून 1975 को आपात काल की घोषणा ने यह सिद्ध कर दिया कि तमाम तरह की असहमतियों के बावजूद भी शासक चाहे तो अपनी सत्ता लालुपता के चलते निरंकुश बन सकता है। नागरिक समाज के अधिकारों को स्थगित कर दिया गया जिसमें जीवन के अधिकार से भी वंचित कर देने को उचित ठहराया गया। संवैधानिक संस्थाओं को बंधक बनाया गया और चौथे स्तम्भ को मौन या भोंपू बनने पर विवश कर दिया गया। 18 माह का आपात काल भारतीय लोकतन्त्र के इतिहास में निरंकुशता एवं तानाशाही के लिए ही याद नहीं किया जाएगा अपितु भारत के लोकतान्त्रिक संकट का काला अध्याय माना गया है। जब भी जनभावनाओं पर आधारित संवैधानिक प्रावधानों और परम्पराओं को हाशिये पर धकेला जाएगा। राजनीतिक संस्कृति का ह्रास होगा चूंकि नकारात्मक अधिष्ठानों पर सकारात्मक सर्जन सम्भव नहीं होगा, नागरिक समाज का कल्याण अवरूद्ध एवं कुन्ठित होने लगता है। आपात काल का दौर जहाँ यह सबक दे गया कि लोकतन्त्र के अस्तित्व को बचाने में बुद्धिजीवियों की भूमिका नगण्य रही तो आपात काल के पश्चात भारतीय लोकतन्त्र की नई चुनौतियाँ राजनीतिक महत्वकांक्षाओं से भरे नेताओं की रही दरअसल वास्तविकता यह है कि हमारा बाह्रय व्यवहारिक दर्शन आन्तरिक मनोदशा का परिणाम होता है।

हमारी आन्तरिक सामाजिक व्यवस्थाओं की मनोदशा का प्रतिबिम्ब विभिन्न विभाजन रेखाओं के तौर पर आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक पिछड़ेपन के रूप में नजर आता है। विभिन्न वर्गो, धर्मो और जातियों में बटा भारतीय समाज अपनी मांगो को मनवाने के लिए पर्याप्त दबाव नहीं बना सकता। इसलिए भी भारतीय नागरिक समाज के हित अधूरे रह जाते है।[6]

ऐसा नही है कि नागरिक संवेदनाएं किसी संेसर से ही आहत हो, वे स्पोन्सर से भी आहत होती है। मसलन मीडिया पर "सेंसर"और मीडिया का स्पोन्सर होना दोनों ही परिस्थितियाँ आपात काल ला सकती है। बोलने पर प्रतिबन्ध घोषित आपात काल की श्रेणी में आता है, तो पक्षपात पूर्ण बोलने की छूट अघोषित आपात काल को जन्म देती है। दोनों स्थितियाँ नागरिक समाज के अधिकारों के लिए खतरा है।व्यक्ति पूजा भी किसी नागरिक समाज को तानाशाही पूर्ण कुशासन के चक्र में फंसा सकती है। किसी नेतृत्वपर उमीद से अधिक विश्वास करना लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं के लिए ठीक नही। भारतीय सन्दर्भ में तो यह जहाँ राष्ट्रीय पटल पर चुनौतिपूर्ण है वही क्षेत्रीय स्तर पर सहभागी लोकतन्त्र की बुनियाद को कमजोर करता है।[7]

पिछले कुछ वर्षो की भारतीय राजनीति पर शोधपूर्ण दृष्टि डाले तो हम बहुलवादी संस्कृति से लगातार अलग हो रहे है। एकत्ववादी विचारधारा का प्रकोप लगातार बढ़ रहा है। हमने दक्षिणपंथी विचार का लम्बा मार्ग तय कर लिया है इसलिए अब धर्मनिरपेक्षता एवं सहिष्णुता कहीं पीछे छूट रही है। नव राष्ट्रवाद की परिभाषाएं संक्रीर्ण हो चली है।किसी भी लोकतन्त्र की सफलता का पैमाना यह नही हो सकता कि उसका बहुसंख्यक कितना मजबूत है अपितु पैमाना यह है कि नागरिक समाज में अल्पसंख्यक क्या भयमुक्त और सुरिक्षत अनुभव करता है। प्रश्न यह उठता है कि नागरिक संशोधन एक्ट हो या राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर या अन्य मामलों पर असहमति जताने वाले लोग भारतीय नागरिक समाज का हिस्सा नही है।तीन कृषि कानूनों पर किसानों के विभिन्न वर्गो की आपत्ति के प्रति सरकारी उपेक्षा भारत के नागरिक समाज की संवेदनाओं का प्रतिकार नही है।[8]

कोविड-19 संक्रमण की प्रथम लहर और दूसरी लहर में असुविधाओं के चलते आकस्मिक मृत्यु दर का अनाक्षेपित रूप से शिखर पर पहुँचना क्या हमारे लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली पर प्रश्न चिन्ह नही लगाता। इसमें कतई सन्देह नही कि कोविड-19 संक्रमण महामारी ने यूँ तो विश्व में तबाही मचाई है किन्तु हमारे सात दशक की स्वस्थ्य सेवाओं की पोल भी खोल कर रख दी। क्या भारतीय शासन व्यवस्था और शासक वर्ग

नागरिक अपेक्षाओं पर खरा उतर पाया। दावे-प्रतिदावें भिन्न हो सकते है उनकी सच्चाई शोध का विषय है किन्तु यह बात उतनी ही प्रमाणिक है कि हम भी अच्छे नागरिक नहीं बन सके जैसे हमारी सरकारें अच्छी नही बन सकी।[9]

एक प्रजातान्त्रिक मूल्य की शासन व्यवस्था में सम्पूर्ण पदसोपान जनमानस की आवाज को, सुनता है जबकि एक तानाशाही व्यवस्था में जनता सरकार की आवाज को सुनती है। लोकतन्त्र के नाम पर बहुमत आता हैं, प्रचण्ड बहुमत आ सकता है ऐसा प्रतीत भी हो सकता है कि विपक्ष शून्यता को प्राप्त हो, तब भी संवैधानिकता की सरकार तानाशाही नहीं हो सकती। प्रचण्ड बहुमत प्रचण्ड सत्ता की परिचायक नहीं होती यह जनसमर्थन की आधिकयता है कठोर शासन की अनुमति नही है।[10]

भारतीयसंविधान की प्रस्तावना में ”हम“ शब्द ही सम्पूर्ण लोकतन्त्र के गणतन्त्रीय आधार का प्रतीक है कोई प्रचण्ड बहुमत की सरकार इस शब्द को ”मैं“ शब्द में परिवर्तित नहीं कर सकती। समहत और असहमत होना किसी भी लोकतन्त्र में व्यक्तिगत एवं सामूहिक विशेषाधिकार है लेकिन असहमति के विरूद्ध यदि पत्रकारों, नागरिक अधिकार कर्ताओं, सामाजिक सचेतकों और विपक्षी दलों के कार्यकर्ताओं को जेलो में बन्द करना, राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियों की समाप्ति, मीडिया का सरकारी एवं दरबारी हो जाना, कानूनों की वैधता के नाम पर जन भावना को बहिष्कृत करना, गैर सरकारी संस्थाओं पर प्रतिबन्ध, न्यायपालिकाओं का पक्षपाती होना और अल्पसंख्यकों के हितों को आघात पहुचाना जैसी बातें भारतीय लोकतन्त्र की वर्तमान एवं भविष्यगत चुनौतियां हैं। चूंकि राज्य जीवन की रक्षा एवं उसे बेहतर बनाने के लिए अस्तित्व में आया है। एक कल्याणकारी, उदारवादी राज्य मानवीय तरक्की के लक्ष्य का हामी है जिसकी वचनबद्धता मनुष्य के जंगली जीवन के त्याग के साथ आरम्भ होती है।इतिहास इसकी पुष्टि करता है कि धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा का प्रभाव किसी भी नागरिक समाज में, लोकतान्त्रिक प्रणालियों वाली जनआकाँक्षाओं में स्थाई नहीं है उसे मानवीय कल्याण के अन्तिम लक्ष्य के लिए समाप्त होना ही पड़ता है। इसलिए सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रिया भारतीय लोकतन्त्र का सत्य एवं तथ्य हैं, जिसमें नागरिक आकाँक्षाओं एवं संवेदनाओं को अधिक समय तक स्थगन नही बनाया जा सकता है।

शोध विधि

उपलब्ध पत्र, पत्रिकाऐं, पुस्तके, ग्रन्थ, रिपार्ट के तथ्यों का तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक स्वरूप की शोध विधि पर आधारित शोध पत्र तैयार किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र ”भारतीय लोकतन्त्र की सच्चाईः उपेक्षित होती नागरिक संवेदनाएँ“के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. नागरिक संवेदनाओं और लोकतान्त्रिक मूल्यों में सम्बन्ध स्थापित करना।
2. भारतीय जनमानस में नागरिक बोध का मूल्याँकन।
3. नागरिक आकाँक्षाए एवं राजनीतिक व्यवहार की दशा एवं दिशा की सच्चाई।
4. असहमति स्वस्थ लोकतन्त्र में अनिवार्य स्वीकृति है।
5. दृढ़ नागरिक बोध, भारतीय लोकतन्त्र की गुणात्मक सुदृढ़ता को उन्नत करेगा।

निष्कर्ष

तमाम लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं की भाँति भारतीय संवैधानिक प्रक्रिया में सत्ता का अन्तिम स्रोत जनता को बनाया गया है। यही सीमा तय करती है कि हमारा लोकतन्त्र जनभावनाओं के अनुकूल होगा अर्थात यथा प्रजा तथा राजा (शासक वर्ग)। जनतन्त्र के अन्तिम उद्देश्यों को प्राप्त करने में हम शायद भटक गये है, स्वतन्त्रता, समानता एवं भा्रतृत्व के वास्तविक मूल्याँकन की कसौटी के परिणाम उत्साहवर्धक नही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय समाज के बहुलवादी स्वरूप की एकता को, धर्म, जाति, लिंग, भाषा, क्षेत्रगत भेदों की समाप्ति पर ही मजबूत किया जा सकता था और इसके विपरीत 75 वर्षो की हमारी लोकतान्त्रिक यात्रा ठीक इस ‘विविधता की एकता’ के प्रतिकूल रही है। न तो हम और न हमारे राजनेता उस नागरिक बोध को आत्मसात कर सके जिस कर्तव्य निष्ठा की एक उन्नत और प्रगतिशील समाज को आवश्यकता है। जनमत निर्माण और सत्ता परिवर्तन की तमाम प्रक्रियाओं में हमारी शुरूआत विकास की राजनीति से होती है और निर्वाचन तक हम पथवादी, जातिवादी, भाषावादी, क्षेत्रवादी और लैंगिक विभेदवादी हो जाते हैं। यह सम्भव है कि सरकारें जनभावनाओं के अनुसार कार्य करें किन्तु कई बार सरकारें जनभावनाओं को अपने एजेण्डे के अनुसार निर्माण करती हैं। इसीलिए लोकतन्त्र अपने बुनियादी लक्ष्यों से भटक जाता है और उसका उद्देश्य बहुमत प्राप्त सत्ता रह जाता है। बहुमत की ऐसी सत्ता निरंकुश होकर जनभावनाओं को गौण बना देती है। ऐसी परिस्थितियां भारत के लिए और आने वाली

पीढियों के नागरिक अधिकारों और नागरिक बोध को कुन्ठित कर देंगी। यह सब एक स्वस्थ लोकतन्त्र के लिए अनुकूल प्रतीत नही होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डा0 तिवारी गंगाधर, 'प्रकाशन नई दिल्ली 1988*
2. *डा0 शरण परमात्मा 'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें' मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ 1997*
3. *गाबा ओ0पी0 'राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा हर्षा प्रिन्टर्स दिल्ली 1994*
4. *योजना पत्रिका, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, अंक दिसम्बर 2020*
5. *कॉटलर फ़िलिप, 'लोकतन्त्र का पतन भविष्य का पुर्निर्माण, सेज प्रकाशन नई दिल्ली - 2017*
6. *राज एस0 विवेक, 'समकालीन भारतीय मुद्दे समस्या एवं समाधान, सिविल सर्विसेज टाइम्स प्रकाशन नई दिल्ली 2013-14*
7. *उपाध्याय रमेश एवं संज्ञा, 'जन और जनतन्त्र शब्दसंधान प्रकाशन नई दिल्ली 2011*
8. *दुबे, अभय कुमार, लोकतन्त्र के सात अध्याय, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2014*
9. *एन0डी0टी0वी0 इण्डिया रिपार्ट 'देश की बात रवीस कुमार के साथ' 25-05-2020*
10. *बीयम डेविड और बॉमले केविन हिन्दी अनुवादक गोयल देसराज 'लोकतन्त्र 80 प्रश्न और उत्तर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, प्रकाशन विभाग नई दिल्ली 2014.*